अमर उजाला

प्रवाह

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना वर्ष : 1948

न्याय का

अदालतों का बोझ कम करने की यही राह है

देश की विभिन्न अदालतों में लंबित मामलों की बढ़ती संख्या, न्याय मिलने में देरी और वर्षों चलने वाले मुकदमों के खर्च को देखते हुए प्रधान न्यायाधीश वैकल्पिक विवाद समाधान के लिए मध्यस्थता की प्रक्रिया पर जोर देने की बात करते रहे हैं, जिससे सच्चे न्याय की उम्मीद बंधती है।

सीवीपी श्रीवास्तव
अध्यक्ष, सेंटर फॉर अल्टरनेट रिसर्च इन गवर्नेंस, दिल्ली

यह बिल्कुल सही है कि न्याय केवल दिया ही नहीं जाना चाहिए, बल्कि दिखना भी चाहिए। न्याय मिलने में विलंब कई अवसरों पर अन्याय का कारण बनता है। यह भी विदित है कि सामाजिक स्तर पर लोगों या समूहों के बीच विचारों का आदान-प्रदान नहीं होना संघर्षों का कारण है। इसी संदर्भ में कुछ ऐसी प्रक्रियाओं का महत्व बढ़ जाता है, जिनके जरिये अंतःक्रियात्मक वातावरण बनाकर विवादों का समाधान किया जा सके और त्वरित न्याय उपलब्ध कराया जा सके। कदाचित इसी उद्देश्य से हाल ही में देश के प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति डी वाई चंद्रचूड़ ने वैकल्पिक विवाद समाधान के लिए मध्यस्थता की प्रक्रिया पर जोर देने की बात कही है।

राष्ट्रीय न्यायिक ग्रिड के आंकड़ों और प्रधान न्यायमूर्ति द्वारा किए गए विश्लेषण के अनुसार, जिला और तालुका स्तर पर न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या लगभग 4.1 करोड़ है, जबकि उच्च न्यायालय में यह संख्या 59 लाख है। हालांकि उच्चतम न्यायालय सबसे कार्यकुशल न्यायालय है, क्योंकि यह प्रतिवर्ष लगभग 45,000-50,000 मामलों का निपटारा करता है, लेकिन इसके बावजूद लगभग 71,000 मामले इसमें भी लंबित हैं। पीआरएस लेजिसलेटिव रिसर्च द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार, 2010 और 2020 के बीच सभी अदालतों में लंबित मामलों की संख्या में औसतन 2.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई है।

न्याय तंत्र की दूसरी बड़ी समस्या वादियों और प्रतिवादियों द्वारा खर्च होने वाली राशि है। ऐसा देखा गया है कि मामलों का निपटारा होने तक कई परिवार गरीबी रेखा से नीचे चले जाते हैं। वैकल्पिक विवाद समाधान एक मितव्ययी प्रक्रिया है। विशेषकर पारिवारिक विवादों के मामले में गोपनीयता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, पक्षकारों की स्वायत्तता का संरक्षण भी होता है। इसी पृष्ठभूमि में वैकल्पिक समाधान प्रक्रियाओं को समझना समीचीन होगा। भारत में वैकल्पिक विवाद समाधान का

सांविधानिक आधार अनुच्छेद 39-ए है, जो अनुच्छेद 21 से सीधे संबंधित है। अनुच्छेद 39-ए में समान और निःशुल्क विधिक सहायता के प्रावधान हैं। दूसरी ओर, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89 के तहत मध्यस्थता (आर्बिट्रेशन), सुलह (कॉन्सिलिएशन) मध्यस्थता / और न्यायिक समाधान अथवा लोक अदालत को स्वीकार किया गया है। इनकी प्रक्रियाओं को नियमित करने के लिए इन्हें कानून के तहत शामिल किया गया है।

जैसे, मध्यस्थता तथा सुलह अधिनियम 1996 (2021 में संशोधित) के तहत क्रमशः बाध्यकारी निर्णय या प्रस्ताव के जरिये सिविल और शमनीय अपराधों (कम संगीन अपराधों, जैसे चोरी, आपराधिक अतिचार, व्यभिचार आदि) का समाधान किया जाता है। इसी प्रकार, मध्यस्थता अधिनियम 2021 में एक भारतीय मध्यस्थता परिषद की स्थापना का उल्लेख है, जो मध्यस्थता समझौते को कानूनी आधार देगा।

सबसे बड़ी बात है कि इस कानून में विवाद समाधान के लिए अधिकतम अवधि 180 दिनों की तय की गई है। इससे त्वरित न्याय उपलब्ध कराना सरल होगा। कई अवसरों पर ऐसे समाधान के बाद भी किसी पक्षकार को संतुष्टि नहीं होती। इसलिए यह प्रावधान भी है कि कोई भी पक्षकार मध्यस्थता के दो सत्रों के बाद प्रक्रिया से बाहर हो सकता है। सिविल और वाणिज्यिक विवादों के समाधान के लिए वाद-पूर्व मध्यस्थता जहां लंबित मामलों की संख्या पर रोक लगाएगी, वहीं यह सामाजिक स्तर पर अंतःक्रिया बढ़ाकर आपसी संबंधों को मजबूत भी बनाएगी।

जहां तक लोक अदालतों का प्रश्न है, इनका प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 39-ए से प्रेरित विधिक सेवाएं प्राधिकरण अधिनियम, 1987 में किया गया है। स्थायी लोक अदालत (अधिनियम की धारा 22-बी) के अलावा राष्ट्रीय लोक अदालत और ई-लोक अदालत का प्रावधान न्यायतंत्र को मजबूत बनाने में सहायक है। भारत में पहली लोक अदालत का आयोजन गुजरात में 1999 में किया गया था। लोक अदालतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके निर्णय अंतिम होंगे और इनके विरुद्ध अपील नहीं की जाएगी। इसका अर्थ इन अदालतों का निरपेक्ष होना नहीं है। अपील का प्रावधान नहीं होने का कारण यह है कि ये अदालतें वाद-पूर्व विवाद समाधान करती हैं। इनकी निरपेक्षता को सीमित करने के लिए यह उल्लेख है कि असंतुष्ट पक्ष न्यायालय में वाद संस्थापित कर सकता है।

न्याय तंत्र तक पहुंच भी भारत में एक बड़ी समस्या रही है। इस तंत्र में तकनीकों के प्रयोग के बाद ई-अदालतों की भूमिका बढ़ी है। यदि ई-लोक अदालतों की भूमिका बढ़ाई जाए, तो न्याय उपलब्धता की स्थिति में निश्चित रूप से सुधार होगा। मध्यस्थता को प्रोत्साहित करने से ही ऐसा हो सकेगा। गौरतलब है कि वर्ष 2019 में आयोजित मध्यस्थता पर सिंगापुर कन्वेंशन अंतरराष्ट्रीय मध्यस्थता निपटान समझौते के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने की दिशा में एक सकारात्मक कदम है। भारत द्वारा शीघ्र ही इसे अनुमोदित करने की आशा है।

उल्लेखनीय है कि दिल्ली मध्यस्थता केंद्र में 31 जुलाई तक मध्यस्थता के लिए उपयुक्त 2,86, 631 मामलों में से कुल 2,81,474 मामलों का सफलतापूर्वक निपटारा किया जा चुका है, जो कुल मामलों का 98.2 प्रतिशत है। यह निश्चित रूप से उत्साहवर्धक है और न्याय तंत्र में वैकल्पिक प्रक्रियाओं के महत्व का प्रतीक है।

मध्यस्थता के विषय पर भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार, मध्यस्थता सामाजिक परिवर्तन का एक साधन है, जहां विचारों के आदान-प्रदान और सूचना के प्रवाह के माध्यम से सामाजिक मानदंडों को सांविधानिक मूल्यों के अनुरूप लाया जाता है। मध्यस्थता के दौरान अमूल्य चर्चा से प्राप्त समाधान व्यक्तियों और समूहों के लिए उनकी शर्तों पर, उनकी समझ में आने वाली भाषा में सच्चा न्याय सुनिश्चित करता है और एक ऐसा मंच प्रदान करता है, जो उनकी भावनाओं की रक्षा करता है और जो उनके अस्तित्व और आत्मा के करीब होता है।

edit@amarujala.com